भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय नैतिकता के आयाम

प्रियंका राय

शोध छात्रा, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भूमिका

वर्तमान वैश्वीकरण के युग में पर्यावरण संकट विश्व के समक्ष चुनौती बनकर खड़ा है। जीवन के अस्तित्व के समक्ष खड़ी इस विकट संकट की स्थिति में पुनः यह आवश्यक हो गया है कि नैतिकता के धरातल पर प्रकृति व मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों का पुनर्मूल्यांकन कर उनके मध्य परस्पर सामंजस्य अथवा संतुलन की स्थापना करे। इसी क्रम में यह विचार उभर कर आया है कि भारतीय संस्कृति की विभिन्न परंपराओं में नैतिक निर्देश प्राप्त होते हैं जो आज भी पूज्य व अनुकरणीय है। प्रस्तुत लेख में स्पष्ट है कि किस प्रकार भारतीय संस्कृति में निहित नैतिक आदर्श मानव में सुप्त पड़ी नैतिक चेतना की जागृति में अपनी महती भूमिका प्रदान करते हैं जिससे पर्यावरण पोषण व संतुलन को बल प्राप्त होता है।

भारतीय संस्कृति एक सनातन संस्कृति है। यह केवल प्रबुद्ध स्वार्थ से संयोजित संस्कृति नही बल्कि विवेकमूलक नैतिकता से मर्यादित आदर्शोन्मुख संस्कृति है। अनादिकाल से ही भारतीय संस्कृति शाश्वत परम्परा के साथ नूतन विचारधाराओं को ग्रहण कर पर्यावरण संरक्षण व पोषण के लिए जन मानस में नव चेतना का संचार कर दिशा–निर्देश करती रही है। यह कार्य बुद्धिमत्ता और नितान्त नूतन–चिंतन दिशा का द्योतक है। इनके आधार पर ही भारतीय संस्कृति पर्यावरणीय नैतिकता का प्रतिपादन कर पर्यावरण संरक्षण व पोषण का उत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत करता है। पर्यावरण 'परि' तथा 'आवरण' दो शब्दों के योग से मिल कर बना है। परि का अर्थ है 'चारो ओर' तथा आवरण का अर्थ है 'ढंका होना'। यानि पर्यावरण वह सब कुछ है जो की हमें चारों ओर से सुरक्षा प्रदान कर सुरक्षा कवच का कार्य करता है। दूसरे शब्दों में समस्त जैविक और अजैविक कारणों के सम्मिश्रण को पर्यावरण कहतें हैं। प्रत्येक कारक, अन्य कारकों के साथ अन्योन्यक्रिया के द्वारा एक स्वतंत्र ईकाई की सृष्टि करता है। जिसे इकोसिस्टम कहा जाता है। इस इकोसिस्टम में प्रत्येक कारक का अपना स्थान अधिकार व स्वतः मूल्य है। अतः हम इनके स्वत्व को सम्मान देकर ही किसी सद्विकास की कल्पना कर सकते हैं।

मनुष्य पर्यावरण का एक अंग है। इसमें ज्ञान, भाव एवं संकल्प की अभिव्यक्ति होती है। जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में पर्यावरण पर पड़ता है। इसलिए जिस प्रकार हम मानवीय समता, सुरक्षा व सामंजस्य के लिए व्यक्तिगत नैतिकता आदि की विवेचना करते हैं ठीक उसी प्रकार पर्यावरण के सभी अंगों के पोषण, सुरक्षा व संतुलन के लिए पर्यावरणीय नैतिकता की मीमांसा आवश्यक हो जाती है। पर्यावरणीय नैतिकता हमारे समक्ष एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करता है। जिसके आधार पर हम पर्यावरण के प्रति किए गए मानवीय कर्मों के औचित्य व अनौचित्य का मूल्यांकन कर सकते हैं।

समत्व, अहिंसा, संयम आदि पर्यावरणीय नैतिकता के आदर्श की प्राप्ति में सहायक पगडण्डियाँ हैं। इन पगडण्डियों को निष्ठापूर्वक पार कर ही मनुष्य परमादर्श राम–राज्य अथवा विशुद्ध पर्यावरण की नींव रख सकता है।

यह निर्विवाद तथ्य है कि जीवन का अस्तित्व एक संतुलित पर्यावरण के सापेक्ष है। वेद के ऋत्, अवेस्ता की आशा तथा अन्य मूल्य मीमांसकों ने भी जगत की एक संतुलित व शाश्वत व्यवस्था को स्वीकार किया है तथा पर्यावरण को ही मानव समेत सभी जीवों का प्राकृतिक आवास

माना है। इस आवास के अन्तर्गत मनुष्य को सर्वाधिक विवेकशील माना गया है। किन्तु तीव्रता से बढ़ती जनसंख्या और प्रदूषित होते पर्यावरण ने इसकी विवेकशीलता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है। नीर–क्षीर की शक्ति अर्थात अच्छे–बुरे, उचित–अनुचित आदि का ज्ञान होना ही विवेक है। किन्तु स्यात् आत्यन्तिक बौद्धिकता (जिसकी परिणाति वैज्ञानिक उच्छृङ्खला में होती है) को ही मानव ने विवेकशीलता की पहचान मान बैठा है जिसके कारण विकास के नाम किए गए लोलूपतापूर्ण कृत्यों जैसे– वनों की कटाई, खनिज खनन, औद्योगिक विकास से जनित अपशिष्ट पदार्थों द्वारा जल व वायु का प्रदूषित होना इत्यादि का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इन सभी निर्मम कृत्यों के कारण आज पर्यावरण प्रदूषित होकर ऐसी नाजुक स्थिति पर पहुँच गया है जहाँ जीव की ही नहीं अपितु स्वयं पृथ्वी का अस्तित्व भी खतरे में है।

अतः पर्यावरण संतुलन व संरक्षण पर चिंतन करना अनिवार्य एवं प्रासंगिक हो जाता है। चूंकि पर्यावरण असंतुलन अति भौतिकतावादी व बाजारीकरण जैसी दुष्प्रवृत्तियों के कारण हुई नैतिक और आध्यात्मिक पतन का प्रतिफल है अतः इन समस्याओं का समाधान केवल वैज्ञानिक मापदण्डों के आधार पर नहीं अपितु नैतिकता के धरातल पर ही संभव है। पर्यावरण नैतिकता एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करता है जिससे पर्यावरण के अवनयन के बिना जगत के प्रत्येक वस्तु के अधिकार व स्वतः मूल्य की रक्षा होती है तथा मानव का संयमित विकास भी होता है।

भारतीय संस्कृति की दो मुख्य धारा है– वैदिक परंपरा और श्रमण परंपरा। इन दोनों ही धाराओं में नीति के दो पक्ष अर्थात सिद्धान्त और व्यवहार साथ–साथ चलते है। इन दोनों ही परंपराओं में पर्यावरण को शुद्ध रखने के संदर्भ में नैतिक निर्देश प्राप्त है। इसके साक्ष्य तत्सम्बन्धित ग्रंथों में प्राप्त होते हैं जिन्हें उजागर कर मानव में सुप्त पड़ी नैतिक चेतना को जागृत किया जा सकता है तथा पर्यावरण पोषण व संरक्षण को एक नया आयाम दिया जा सकता है।

वैदिक धारा से सम्बन्धित सहित्यों में पर्यावरण के समस्त अंगों को जीवन का अधिष्ठान मान कर अनेक ऋचाओं में उनकी वंदना की गई है तथा उनके कृपा की अपेक्षा की गई है। वेदों में जल को जीवन का अधिष्ठान और औषधिरूप मानते हुए कहा गया है कि–

"तस्मा अरंगमामव यस्य क्षयाय जिन्वथ।

आपो जनयथा च नः।। *(ऋक्0 10/9/3)*

प्रकृति का संतुलित व स्वस्थ स्वरूप ही शांतिदायक है। अथर्ववेद में प्रकृति के संतुलित स्वरूप की कामना की गई है–

द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिपृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः

शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः ब्राह्म शान्तिः

सर्वं शान्ति रेव शान्तिः। सा मां शान्तिरेधि। *(अथर्ववेद 19/9/14)*

इतना ही नहीं यजुर्वेद में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो पुरूष समस्त प्राकृतिक तत्त्वों में ईश्वर को व्यापक जानता है, वह कभी संदेह में नहीं पड़ता है–

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति।। *(यजुर्वेद 40/6)*

उपरोक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि प्रकृति का शक्तिमय एवं पूज्य स्वरूप पर्यावरणीय नैतिकता की आधारशिला है, जो की वेदों में स्पस्ट रूप से द्रष्टव्य है।

भारतीय संस्कृति के श्रमण धारा अर्थात् जैन, बौद्ध तथा अन्य तापसी परंपराओं में भी पर्यावरण संरक्षण व संतुलन की गहन चेतना दृष्टिगत होती है। जैन परंपरा में 24 तीर्थकरों का विवरण मिलता है। प्रत्येक तीर्थकर को एक चैत्य वृक्ष से जोड़ा गया है तथा लांछनों के रूप में वन या जल जीवों आदि का प्रयोग किया गया है। इन तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि जैनाचार्य पर्यावरण के प्रति बेहद संवेदनशील रहे हैं।

आचारांग सूत्र में ''आयओबहिया पास'' का संदेश दिया गया है तथा मनुष्य की नैतिक चेतना को जागृत करने के उद्देश्य से कहा गया है कि–

जिसको तुम मारना चाहते हो, वह स्वयं तुम हो। *(आचारांग सूत्र 1/5/5)*

तात्पर्य यह कि पर–हिंसा, स्व–हिंसा की है।

श्रमण धारा की दूसरी मुख्य धारा अर्थात् बौद्ध धर्म भी पर्यावरण–संरक्षण का अनुगामी रहा है। बौद्ध धर्म का उद्भव व विकास प्रकृति की गोद में ही हुआ है। बौद्धों का प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त पर्यावरण संरक्षण की आधारशिला है। इस सिद्धांत के अनुसार विश्व की प्रत्येक वस्तु, घटनायें परस्पर सम्बन्धित तथा निर्भर है। अतः मानव को महाकरूणा से प्रेरित होकर प्रत्येक कर्म को करना चाहिए। करूणा भाव से ही प्रकृति के अनावश्यक दोहन के प्रति सचेतना तथा सभी प्राणियों के प्रति प्रेम भाव की जागृति हो सकती है। पर्यावरणीय नैतिकता की दृष्टि से बौद्ध त्रिपटकों में विनय पिटक श्रेष्ठ है। इसके अनुशीलन से मनुष्य संयम, शुचिता एवं व्यक्तिगत नैतिक उत्तरदायित्यों से पर्यावरण को संरक्षित व पोषित कर सकता है।

सारांश

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति की आस्तिक और नास्तिक दोनों ही धाराओं ने पर्यावरण के समस्त अंगों को जीवन के अधिष्ठान हेतु आवश्यक माना है तथा प्रत्येक अंग के अधिकार व स्वतः मूल्य की रक्षा के लिए नैतिक निर्देश दिए गए हैं। इन नैतिक निर्देशों के अनुसार अपने संकल्पों को गति देकर ही मनुष्य पर्यावरण संरक्षण और पोषण के साथ अपना सर्वागीण विकास कर सकता है। आज व्यक्तिगत, समाजिक नैतिकता के साथ पर्यावरणीय नैतिकता का परिज्ञान होना भी नितान्त आवश्यक है क्योंकि इसके आधार पर ही विश्व में संयमित विकास का मॉडल निर्मित हो सकता है। वर्तमान युग यदि भारतीय संस्कृति में निहित अहिंसा, संयम, समतादि विश्वोपकारी आदर्शों को हृदयंगम कर ले तो सम्पूर्ण विश्व का कल्याण निश्चित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. आचार्य, श्रीरामशर्मा, ऋग्वेद संहिता, ब्रह्मवर्चम्, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तरांचल)।
2. आचार्य, श्रीरामशर्मा, अथर्ववेद संहिता, ब्रह्मवर्चम्, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तरांचल)।
3. आचार्य, श्रीरामशर्मा, यजुर्वेद संहिता, ब्रह्मवर्चम्, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तरांचल)।
4. वर्मा, वेद प्रकाश, नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त, एलाइड पब्लिशर्स लि0 दिल्ली, 1982
5. झा और मिश्र, आचारशास्त्र के मूल सिद्धान्त, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, 1968
6. भट्ट, गोवर्द्धन (अनु0), नीति प्रवेशिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1972
7. आचार्य महाप्रज्ञ, आचारांगसूत्र एवं आचारांग भाष्य, जैन विश्व भारती, लाडनं।